IOSR Journal of Humanities and Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 23, Issue 9, Ver. 8 (September. 2018) 54-60
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

गुप्तकालीन शिक्षा व्यवस्था व शिक्षण संस्थानों का ऐतिहासिक अध्ययन

सुनील कुमार बौद्ध
प्रवक्ता, इतिहास विभाग, बाबा मोहनराम किसान सह शिक्षा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिवाड़ी, अलवर (राज.)

शोध सारांश

गुप्त काल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण काल कहा जाता है। इतिहासकारों ने इसे शास्त्रीय युग भी कहा है। गुप्तयुग में वर्तमान युग के समान शासकीय या अशासकीय विशाल शिक्षण संस्थाएं नहीं थीं। गुरू व्यक्तिगत रूप से अपने गृहों में शिष्यों को शिक्षा देते थे। नगरों की भीड़भाड़ और कोलाहल से दूर ग्रामीण क्षेत्रों में या बन में ऐसे गुरू रहते थे। ऐसे गुरूओं के निवासगृह आश्रम या गुरुकुल कहलाते थे। ऐसे गुरूकुल दो प्रकार के होते थे– (1) गृहस्थ गुरू के नगर या गांव में आश्रम, (2) प्रव्रजित गुरु के वनस्य आश्रम। आश्रम जीवन और उस आश्रम में रहकर विद्याध्ययन करने वाले शिष्यों के विषय में गुप्तयुग के साहित्यिक ग्रंथों में और कालिदास की रचनाओं में विवरण है। पर यह कहना कठिन है कि ऐसे आश्रम या गुरूकुल बहुसंख्यक थे या यह आश्रम प्रणाली समाप्त हो रही थी। अनेक प्रसिद्ध आचार्य, गुरू पवित्र तीर्थ स्थानों, राजधानियों, और प्रसिद्ध विशाल नगरों में भी निवास करते थे। वहां वे अपने–अपने निवासगृहों में जो आश्रम या गुरूकुल के समान थे विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। इनके पास अनेक विद्यार्थी अध्ययन के लिये रहते थे। इन्हें कोई निश्चित वेतन नहीं मिलता था। पूजा–पाठ, धार्मिक कृत्य, दान–दक्षिणा एवं राज्य के अनुदानों से इन आचार्यो का निर्वाह होता था। अग्रहार दान आचार्यों तथा प्राप्त करने वाले ब्रह्मचारियों के लिये दिये जाते थे। हालाँकि हर युग या अवधि की संस्कृति की अपनी विशेषता होती है, लेकिन जहाँ तक गुप्त काल की सभ्यता और संस्कृति का सवाल है, इस युग में, भारतीय समाज ने न केवल जीवन के हर क्षेत्र में असाधारण प्रगति की, बल्कि इसका सर्वांगीण विकास भी किया। । इस अवधि की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और कलात्मक प्रगति के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गुप्त काल की महिमा और गरिमा इतनी व्यापक थी कि इसे प्राचीन भारत के स्वर्ण युग के रूप में जाना जाता है। गुप्त काल की चहुंमुखी प्रगति और चकाचौंध की चमक सोने जैसी थी। इस युग में, साहित्य और कला का विकास एक अभूतपूर्व विकास था। इस शोध पत्र में, हम आर्थिक शासन, आर्थिक स्थिति, धर्म, समाज, शिक्षा और साहित्य, कला और साहित्य विकास के मुख्य पहलुओं से अवगत होने का प्रयास करेंगे। गुप्त शासन की प्रणाली इतनी सुव्यवस्थित और उत्कृष्ट थी कि इसके संबंध में, चीनी यात्री (उसकी आँखों में देखा) ने लिखा है किः "गुप्त काल में लोग बहुत खुश हैं। व्यवहार और पंच पंचायतों के बारे में कुछ नहीं लिखा है। सभी लोग राजा को भूमि मानते हैं और उसे कर के रूप में उपज का एक निश्चित हिस्सा देते हैं। लोग अपनी इच्छानुसार आकर रह सकते हैं। राजा न तो किसी को मृत्यु देता है और न ही किसी तरह की शारीरिक यातना देता है। अपराधी को शर्त के अनुसार सबसे अच्छा साहस या उदारवादी साहस दिया जाता है। बार–बार डाकुओं का क्षय होता है। राजा के प्रतिहार और साथी वेतनभोगी हैं। पूरे देश में, कोई भी निवासी जानवर हिंसा नहीं करता है और न ही शराब पीता है, न ही कोई लहसुन और प्याज खाता है। केवल चांडाल लोग ही मछली मारते हैं, मारते हैं और मांस बेचते हैं। "इस विवरण से यह पता चलता है कि गुप्त शासन कितना मजबूत था। भारत में हर जगह रामराज्य जैसा माहौल था। सम्राट प्रजा वत्सल और लोकप्रिय थे। देश में धन, समृद्धि, शांति, शालीनता, समानता का माहौल था। । शासक प्रजिथ को सर्वोपरि मानते थे। नालंदा विश्वविद्यालय गुप्त काल का एक प्रसिद्ध शिक्षा केंद्र था, जो कला, दर्शन, व्याकरण, मानविकी और ज्योतिष जैसे विषयों में उत्कृष्ट शिक्षा प्रदान करता था।

मुख्य बिंदुः – गुप्तकाल में शिक्षा, शैक्षणिक संस्थानों की स्थिति, शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा कला और संस्कृति, शिक्षा का महत्व ।

प्रस्तावनाः –

गुप्त शासन की प्रणाली इतनी सुव्यवस्थित और उत्कृष्ट थी कि इसके संबंध में, चीनी यात्री (उसकी आँखों में देखा) ने लिखा है किः "गुप्त काल में लोग बहुत खुश हैं। व्यवहार और पंच पंचायतों के बारे में कुछ नहीं लिखा है। सभी लोग राजा को भूमि मानते हैं और उसे कर के रूप में उपज का एक निश्चित हिस्सा देते हैं। लोग अपनी इच्छानुसार आकर रह सकते हैं। राजा न तो किसी को मृत्यु देता है और न ही किसी तरह की शारीरिक यातना देता है। अपराधी को शर्त के अनुसार सबसे अच्छा साहस या उदारवादी साहस दिया जाता है। बार–बार डाकुओं का क्षय होता है। राजा के प्रतिहार और साथी वेतनभोगी हैं। पूरे देश में, कोई भी निवासी जानवर हिंसा नहीं करता है और न ही शराब पीता है, न ही कोई लहसुन और प्याज खाता है। केवल चांडाल लोग ही मछली मारते हैं, मारते हैं और मांस बेचते हैं। "इस विवरण से यह पता चलता है कि गुप्त शासन कितना मजबूत था। भारत में हर जगह रामराज्य जैसा माहौल था। सम्राट प्रजा वत्सल और लोकप्रिय थे। देश में धन, समृद्धि, शांति, शालीनता, समानता का माहौल था। । शासक प्रजिथ को सर्वोपरि मानते थे। वह विषयों के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिए अधिक समय देते थे। तभी जनता को अपने जीवन को स्वतंत्र रूप से जीने का अधिकार था। उस समय, कई सामाजिक व्यवस्थाएं थीं, कई धार्मिक परंपराएं थीं। और भारत में कई भाषाएं। गुप्त सम्राट भारत की इन विविध विशेषताओं से परिचित थे। राष्ट्रीय आर्य संस्कृति और सांस्कृतिक एकता की स्थापना के लिए, उन्होंने विदेशी तत्वों को अलग करने की कोशिश की। "भारत भारतीयों के लिए है", उनके संपादन को कहा जा सकता है। राष्ट्रीय एकता का आधार। धर्म, भाषा, समुद्रगुप्त और उसके बाद के सभी शासकों की एकता के लिए, कम से कम रन के साथ दिग्विजय अभियान की योजना को लागू करने का प्रयास किया। गुप्त काल के दौरान रेज किया गया, जिसके लिए उन्होंने एकछत्र साम्राज्य की स्थापना की। सम्राट समुद्रगुप्त ने दिग्विजय की महान परंपरा को स्वीकार किया, आर्यावर्त के सभी उत्तरी राज्यों को हराकर उन्हें जीत लिया और उन्हें अपने साम्राज्य साम्राज्य का हिस्सा बना लिया। उन्होंने दक्षिणापथ को भी अपने अधीन कर लिया। समुद्रगुप्त के बाद, उनके पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय ने मगध की गद्दी संभाली और विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। वास्तव में, वह उस समय भारत के सबसे शक्तिशाली सम्राट थे, जिन्होंने

स्वधर्म, स्वदेश और स्वभाषा की आदर्श भावना को स्थापित किया। अपनी छतरी की मदद से, उन्होंने संरक्षित इलाके से विदेशी आक्रमणकारियों जैसे हूणों को मारने का बेजोड़ काम किया। इस दिग्विजता ने विभिन्न रूपों में भारत की भूमि पर अपनी सार्वभौमिक शक्ति का परिचय दिया।

गुप्त काल के महान सम्राटों की महान शक्ति और वीरता उत्तराधिकारियों का एक परिणाम थी जिन्होंने अखंड राज्य के लिए अपने विस्तारित राज्यों को छोड़ दिया। इस देश की सामाजिक शक्ति इतनी मजबूत और मजबूत थी कि किसी भी विदेशी ने भारत की भूमि पर आंखें मूंदने की हिम्मत नहीं की। इन सम्राटों ने जनता की भलाई के लिए अविस्मरणीय काम किया।

उद्देश्य :–

1. गुप्तकालीन शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन करना।

2. गुप्तकाल में शिक्षा संस्थानों का मूल्यांकन करना ।

3. गुप्तकालीन शिक्षा , कला एवं संस्कृति के प्रभाव को स्पष्ट करना।

परिकल्पना :–

1. गुप्तकालीन शिक्षा व्यवस्था सुदृढ़ थी ।

2. गुप्तकालीन शिक्षा के समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़े हैं ।

अध्ययन विधि और आंकड़ों का संग्रहः –

प्रस्तुत अध्ययन के लिए ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति का उपयोग किया जाता है। इस अध्ययन के लिए ऐतिहासिक दृष्टिकोण का उपयोग किया जाता है। अध्ययन में द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक आँकड़ो का संकलन डायरी, पत्रिकाओं, समाचार पत्रों और विभिन्न संचार साधनों और पुस्तकों के माध्यम से किया गया है ।

गुप्तकालीन शिक्षण संस्थाएँ

गुप्तयुग में वर्तमान युग के समान शासकीय या अशासकीय विशाल शिक्षण संस्थाएं नहीं थीं। गुरू व्यक्तिगत रूप से अपने गृहों में शिष्यों को शिक्षा देते थे। नगरों की भीड़भाड़ और कोलाहल से दूर ग्रामीण क्षेत्रों में या बन में ऐसे गुरू रहते थे। ऐसे गुरूओं के निवासगृह आश्रम या गुरुकुल कहलाते थे। ऐसे गुरूकुल दो प्रकार के होते थे– (1) गृहस्थ गुरू के नगर या गांव में आश्रम, (2) प्रव्रजित गुरू के वनस्य आश्रम। आश्रम जीवन और उस आश्रम में रहकर विद्याध्ययन करने वाले शिष्यों के विषय में गुप्तयुग के साहित्यिक ग्रंथों में और कालिदास की रचनाओं में विवरण है। पर यह कहना कठिन है कि ऐसे आश्रम या गुरूकुल बहुसंख्यक थे या यह आश्रम प्रणाली समाप्त हो रही थी। अनेक प्रसिद्ध आचार्य, गुरू पवित्र तीर्थ स्थानों, राजधानियों, और प्रसिद्ध विशाल नगरों में भी निवास करते थे। वहां वे अपने–अपने निवासगृहों में जो आश्रम या गुरूकुल के समान थे विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। इनके पास अनेक विद्यार्थी अध्ययन के लिये रहते थे। इन्हें कोई निश्चित वेतन नहीं मिलता था। पूजा–पाठ, धार्मिक कृत्य, दान–दक्षिणा एवं राज्य के अनुदानों से इन आचार्यों का निर्वाह होता था। अग्रहार दान आचार्यों तथा प्राप्त करने वाले ब्रह्मचारियों के लिये दिये जाते थे। गुप्त सम्राट के गया के ताम्रपत्र अभिलेख में उल्लेख है कि ब्रह्मचारी गोपदेव स्वामिन के लिये अग्रहार दान दिया गय था। सिवानी अभिलेख में कहा गया है कि आचार्य देवशर्मा को ब्रह्मपूरक ग्राम दान में दिया गया था। स्मृतिकारों ने विद्वान ब्राह्मणों को आर्थिक अनुदान देने का भी विधान किया है। अग्रहार गांव भी जो राजाओं की ओर से विद्वान ब्राह्मणों और आचार्यों को दान में दिये जाते थे, शिक्षा के केन्द्र हो जाते थे। कलिंग नरेश उमावर्मन के राज्य में 36 अग्रहार ग्रामों में शिक्षा प्रदान की जाती थी। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त आदि सम्राटों ने भी ऐसे अनेक अग्रहार गांव दान में दिये थे, जहां शिक्षा की व्यवस्था थी।'

गुप्तयुग में पाटलिपुत्र, पद्मावती (पवा या), मथुरा, उज्जयनी, अयोध्या, प्रवरपुर, वत्यगुल्म, वाराणसी, नासिक, ओर वल्लभीनगर शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। अयोध्या के ब्राह्मण मंत्र, सूत्र तथा भाष्य में बड़े विद्वान होते थे। इन बड़े प्रसिद्ध नगरों और राजधानियों के राजप्रासाद और धनसम्पन्न व्यक्तियों के भवन भी शिक्षा के केन्द्र थे। कालिदास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि राजप्रासादों में राजभवन की स्त्रियों और कुमारियों के शिक्षण की व्यवस्था होती थी। राजा अग्निमित्र के राजप्रासाद में नृत्य, संगीत, अभिनय, चित्रकला आदि ललित कलाओं के शिक्षण की व्यवस्था थी। राजप्रासाद में ही संगीतशाला और चित्रशाला थी। यहां विशेषज्ञों से प्रशिक्षित वेतन पानेवाले आचार्य विविध विषयों की शिक्षा देते थे।

जब कोई गुरू या आचार्य अपनी विद्या, ज्ञान आदि के कारण विशेष यश और कीर्ति प्राप्त कर लेता था, तब उसके यहां अधिक संख्या में शिष्य विद्या ग्रहण करने के लिये आते थे। धीरे–धीरे उसका छोटा सा आश्रम बड़े गुरूकुल में विकसित हो जाता था और वह एक बड़ी शिक्षण संस्था बन जाती थी। एक ही नगर में ऐसे प्रसिद्ध आचार्यों के पृथक् पृथक केन्द्र हो जाते थे जिससे वह नगर शिक्षा और ज्ञान का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय बन जाता था। प्राचीन भारत में ईसापूर्व की सातवीं सदी से लेकर ईस्वी सन की तीसरी सदी तक तक्षशिला शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र रहा। यहां विभिन्न विद्याओं और शिल्पकलाओं की शिक्षा दी जाती थी। बौद्ध जातक ग्रंथों में तक्षशिला के विद्यापीठों का विशद विवरण है। कोशल नरेश प्रसेन जीत, बुद्ध के प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक और चन्द्रगुप्त मौर्य के मंत्री तथा अर्थशास्त्र के विद्वान लेखक चाणक्य ने तक्षशिला में ही शिक्षा प्राप्त की थी। परंतु गुप्तकाल के प्रारंभ होते होते तीसरी सदी में शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र के रूप में तक्षशिला का महत्व बहुत कम हो गया था। गुप्तकाल के उत्तरार्ध में इसका स्थान नालंदा के बौद्ध विहारों ने ले लिया था और उत्तर गुप्तकाल में नालंदा एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हो रहा था।

नालन्दा विश्वविद्यालय :—

प्राचीन भारत के शिक्षा केन्द्रों में नालन्दा विश्वविद्यालय का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है। बिहार प्रान्त की राजधानी पटना के दक्षिण में लगभग 40 मील की दूरी पर आधुनिक बड़गाँव नामक ग्राम के समीप यह स्थित था। राजगृह से नालंदा की दूरी लगभग आठ मील है। सर्वप्रथम यहाँ एक बौद्ध विहार की स्थापना गुप्त—काल में करवाई गयी। चीनी यात्री हुएनसांग लिखता है कि इसका संस्थापक 'शक्रादित्य' था जिसने बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों के प्रति महती श्रद्धा के कारण इसकी स्थापना करवायी थी। 'शक्रादित्य' की पहचान कुमारगुप्त प्रथम (415—455 ई0) से की जाती है जिसकी सुप्रसिद्ध उपाधि 'महेन्द्रादित्य' की थी। 'महेन्द्र' तथा 'शक्र' एक दूसरे के पर्यायवाची है। कुमारगुप्त के पुत्र तथा उत्तराधिकारी बुद्धगुप्त ने अपने पिता के कार्य को जारी रखते हुए इसके दक्षिण में दूसरा विहार बनवाया। इसके बाद तथागतगुप्त ने पूरब में एक विहार बनवाया तथा फिर बालादित्य ने पूर्वोत्तर दिशा की ओर एक अन्य विहार बनवाया। तत्पश्चात् उसके पुत्र वज ने इस विहार के पश्चिम की ओर एक विहार बनवा ।

दिया। इसके बाद मध्यभारत के एक शासक ने यहां एक विहार बनवाया तथा सभी विहारों को चारों ओर से घेरते हुए एक चहारदीवारी बनवा दी। चीनी यात्री द्वारा उल्लिखित उपर्युक्त राजाओं में प्रथम पांच गुप्त वंश से संबंधित है यद्यपि उनकी पहचान तथा क्रम सुनिश्चित नहीं है। मध्य भारत के शासक की पहचान सम्राट हर्ष से की जाती है जिसने नालन्दा में एक ताम्रविहार बनवाया था। ग्यारहवीं शती के अन्त तक हिन्दू तथा बौद्ध दाताओं द्वारा नालंदा में मठ तथा विहार बनवाये जाने का क्रम चलता रहा। हर्षकाल तक आते—आते नालंदा महाविहार एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हो गया।

नालन्दा में की गयी खुदाइयों से पता चलता है कि यहां का विश्वविद्यालय लगभग एक मील लम्बे तथा आधा मील चौड़े क्षेत्र में स्थित था। भवन, स्तूप एवं विहार वैज्ञानिक योजना के आधार पर बनाये गये थे। विश्वविद्यालय में आठ बड़े कमरे तथा व्याख्यान के लिये तीन सौ छोटे कमरे बने हुए थे। तीन भवनों में स्थित 'धर्मगञ्ज' नामक विशाल पुस्तकालय था। नालंदा के भवन भव्य, उत्तुंग तथा बहुमजिले थे। हुएनसांग का जीवनचरितकार ह्ववी—ली यहां के भवनों का अत्यंत रोचक विवरण प्रस्तुत करता है जो इस प्रकार है— 'संपूर्ण संस्थान ईटों की दीवार से घिरा हुआ है जो कि पूरे मठ को बाहर से घेरती है। एक द्वार विद्यापीठ की ओर है जिससे आठ अन्य हाल जो (संघाराम के) बीच में स्थित हैं, अलग किये गये हैं। प्रचुर रूप से अलंकृत मीनारें तथा परियों के समान गुम्बज, पर्वत की नुकीली चोटियों की तरह परस्पर हिले—मिले से खड़े हैं। मान मंदिर (प्रातः कालीन) धुम्र में विलीन हुए से लगते हैं तथा ऊपरी कमरे बादलों के ऊपर विराजमान है। खिड़कियों से कोई यह देख सकता है कि किस प्रकार हवा तथा बदल नया—नया रूप धारण करते हैं, और उत्तुंग ओलतियों के ऊपर सूर्य एवं चन्द्रमा की कान्ति देखी जा सकती है। गहरे तथा पारभासी तालाबों के ऊपर नील कमल खिले हुए हैं जो गहरे लाल रंग के कनक पुष्पों से मिले हैं तथा बीच—बीच में आम्रकुञ्ज चारों ओर अपनी छाया विखेरते हैं। बाहर की सभी कक्षायें जिनमें श्रमण आवास हैं चार—चार मंजिली हैं। उनके मकराकृत बार्जे, रंगीन ओलतियाँ, सुसज्जित एवं चित्रित मोती के समान लाल स्तंभ, सुअलंकृत लघु स्तंभ तथा खपड़ों से ढकी हुई छतें जो सूर्य का प्रकाश सहस्त्रों रूप में प्रतिबिम्बित करती हैं—ये सभी विहार की शोभा को बढ़ा रही हैं।' इस चीनी विवरण की पुष्टि न्यूनाधिक रूप में आठवीं शती के कन्नौज नरेश यशोवर्मन के नालन्दा से प्राप्त प्रस्तर अभिलेख से हो जाती हैं जिसके अनुसार 'नालन्दा की गगनचुम्बी पर्वत शिखर के समान विहारवलियाँ पृथ्वी के ऊपर ब्रह्मा द्वारा विरचित सुन्दर माला के समान शोभायमान हो रही थीं। नालन्दा में विहारों के अतिरिक्त अनेक स्तूप भी थे जिनमें बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्तियां रखी गयी थीं। इस प्रकार इन सभी भवनों के बीच नालंदा का विश्वविद्यालय एक विस्तृत क्षेत्र में स्थित था।

ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा केन्द्र के रूप में नालंदा की ख्याति पांचवी शताब्दी से बढ़ी तथा छठी शताब्दी तक आते—आते यह न केवल भारत अपितु अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में भी प्रतिष्ठित हो गया। चीनी यात्री फाहियान जो चौथी शताब्दी में भारत की यात्रा पर आया, नालन्दा का कोई उल्लेख नहीं करता जबकि उसके दो शताब्दियों बाद आने वाले चीनी यात्री हुएनसांग तथा इत्सिंग इसकी उच्चशब्दों में प्रशंसा करते हैं। स्पष्ट है कि हर्षकाल में नालंदा को पूर्ण राजकीय संरक्षण मिला जिसके परिणामस्वरूप यह जगत्प्रसिद्ध विश्वविद्यालय बन गया। हर्ष ने लगभग एक सौ गांवों की आय इसके निर्वाह के लिये दिया। चीनी विवरण से पता चलता है कि इन गांवों के दो सौ गृहस्थ प्रतिदिन कई सौ पिकल (एक पिकल = 133 पौण्ड) साधारण चावल तथा कई सौ कट्टी (एक कट्टी = 160 पौण्ड) घी और मक्खन नालन्दा विश्वविद्यालय को दान मे 'दिया करते थे। इस प्रकार यहां के विद्यार्थियों को जीवनोपयोगी वस्तुयें इतनी अधिक मात्रा में सुलभ थीं कि उन्हें मांगने के लिये अन्यत्र नहीं जाना पड़ता था तथा वे अपना सारा समय विद्याध्ययन में ही लगाते थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय में न केवल भारत के कोने—कोने से अपितु चीन, मंगोलिया, तिब्बत, कोरिया, मध्यएशिया आदि देशों से भी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। ह्री—ली यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या दस हजार बताता है। ज्ञात होता है कि यहाँ अध्ययन—अध्यापन का स्तर अत्यंत उच्च कोटि का था। प्रवेश के लिये एक कठिन परीक्षा ली जाती थी जिसमें दस में दो या तीन विद्याथर्सी ही मुश्किल से सफल हो पाते थे। यहाँ के स्नातकों का बड़ा सम्मान था तथा देश में कोई भी उनकी समानता नहीं कर सकता था। इसी कारण यहां प्रवेश लेने के लिये विद्यार्थियों की अपार भीड़ लगी रहती थी।

यद्यपि नालन्दा महायान बौद्धधर्म की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था तथापि यहाँ अनेक विषयों की शिक्षा भी समुचित रूप से प्रदान की जाती थी। पाठ्यक्रम में महायान तथा बौद्धधर्म के अठारह सम्प्रदायों के ग्रन्थों के अतिरिक्त वेद, हेतुविद्या, शब्दविद्या, योगशास्त्र चिकित्सा, तंत्रविद्या, सांख्य दर्शन के ग्रन्थों आदि की शिक्षा व्याख्यानों के माध्यम से दी जाती थी। विभिन्न विषयों के प्रकाण्ड विद्वान् प्रतिदिन सैकड़ों व्याख्यान देते थे जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी को उपस्थित होना आवश्यक था। हुएनसांग जिसने स्वयं यहाँ 18 महीने तक रहकर अध्ययन किया लिखता है कि यहाँ सैकड़ों की संख्या में अत्यंत उच्चकोटि के विद्वान् निवास करते थे। 'एक हजार व्यक्ति ऐसे थे जो सूत्रों और शास्त्रों के बीस संग्रहों का अर्थ समझा सकते थे, 500 व्यक्ति ऐसे थे जो 30 संग्रहों को कट्टी (एक कट्टी = 160 पौण्ड) घी और मक्खन नालन्दा विश्वविद्यालय को दान मे 'दिया करते थे। इस प्रकार यहां के विद्यार्थियों को जीवनोपयोगी वस्तुयें इतनी अधिक मात्रा में सुलभ थीं कि उन्हें मांगने के लिये अन्यत्र नहीं जाना पड़ता था तथा वे अपना सारा समय विद्याध्ययन में ही लगाते थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय में न केवल भारत के कोने–कोने से अपितु चीन, मंगोलिया, तिब्बत, कोरिया, मध्यएशिया आदि देशों से भी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। ह्वी–ली यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या दस हजार बताता है। ज्ञात होता है कि यहाँ अध्ययन–अध्यापन का स्तर अत्यंत उच्च कोटि का था। प्रवेश के लिये एक कठिन परीक्षा ली जाती थी जिसमें दस में दो या तीन विद्याथर्सी ही मुश्किल से सफल हो पाते थे। यहाँ के स्नातकों का बड़ा सम्मान था तथा देश में कोई भी उनकी समानता नहीं कर सकता था। इसी कारण यहां प्रवेश लेने के लिये विद्यार्थियों की अपार भीड़ लगी रहती थी।

यद्यपि नालन्दा महायान बौद्धधर्म की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था तथापि यहाँ अनेक विषयों की शिक्षा भी समुचित रूप से प्रदान की जाती थी। पाठ्यक्रम में महायान तथा बौद्धधर्म के अठारह सम्प्रदायों के ग्रन्थों के अतिरिक्त वेद, हेतुविद्या, शब्दविद्या, योगशास्त्र चिकित्सा, तंत्रविद्या, सांख्य दर्शन के ग्रन्थों आदि की शिक्षा व्याख्यानों के माध्यम से दी जाती थी। विभिन्न विषयों के प्रकाण्ड विद्वान् प्रतिदिन सैकड़ों व्याख्यान देते थे जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी को उपस्थित होना आवश्यक था। हुएनसांग जिसने स्वयं यहाँ 18 महीने तक रहकर अध्ययन किया लिखता है कि यहाँ सैकड़ों की संख्या में अत्यंत उच्चकोटि के विद्वान् निवास करते थे। 'एक हजार व्यक्ति ऐसे थे जो सूत्रों और शास्त्रों के बीस संग्रहों का अर्थ समझा सकते थे, 500 व्यक्ति ऐसे थे जो 30 संग्रहों को पढ़ा सकते थे, धर्म के आचार्य को लेकर दस ऐसे थे जो 50 संग्रहों की व्याख्या कर सकते थे। इन सभी में शीलभद्र अकेले ऐसे थे जो सभी संग्रहों के ज्ञाता थे। इस प्रकार विभिन्न विद्याओं, विचारों एवं विश्वासों में सामंजस्य स्थापित करना विश्वविद्यालय की प्रमुख विशेषता थी। यहाँ विचारों एवं विश्वासों की स्वतंत्रता तथा सहिष्णुता की भावना विद्यमान थी। हुएनसांग के समय शीलभद्र ही विश्वविद्यालय के कुलपति थे। चीनी यात्री उनके चरित्र तथा विद्वता की काफी प्रशंसा करता है। वे सभी विषयों के प्रकाण्ड पण्डित थे। उसने स्वयं शीलभद्र के चरणों में बैठकर अध्ययन किया था। वह उन्हें 'सत्य एवं धर्म का भण्डार' कहता है। यहाँ के अन्य विद्वानों में धर्मपाल (जो शीलभद्र के गुरू तथा उनके पूर्वगामी कुलपति थे), चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिनमित्र, ज्ञानचन्द्र आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन सभी की ख्याति दूर–दूर तक फैली हुयी थी। ये सभी विद्वान् मात्र अच्छे शिक्षक ही नहीं थे अपितु विभिन्न ग्रन्थों के रचयिता भी थे। इनकी रचनाओं का समकालीन विश्व में बड़ा सम्मान था। इन प्रसिद्ध आचार्यों के अतिरिक्त नालन्दा में अन्य विद्वान् भी थे जिन्होंने विद्या के कारण प्रकाश से पूरे देश को आलोकित किया।

नालन्दा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में ग्रन्थों का विशाल संग्रह तथा प्राचीन पाण्डुलिपियां सुरक्षित थीं। चीनी यात्रियों के इसके प्रति आकर्षण का एक कारण यह था कि उन्हें यहाँ बौद्ध ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हो जाती थीं। इत्सिंग ने यहां रहकर 400 संस्कृत ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ तैयार की थीं। यहाँ का धर्मगंज नामक पुस्तकालय तीन भव्य भवनों रत्नसागर, रत्नोदधि तथा रत्नरंजक में स्थित था। विश्वविद्यालय का प्रशासन चलाने के लिये दो परिषदें थी–बौद्धिक तथा प्रशासनिक । इन दोनों के ऊपर कुलपति होता था। विश्वविद्यालय का खर्च शासकों तथा अन्य दाताओं द्वारा प्रदान किये गये ग्रामों में राजस्व में चलता था। इत्सिंग के समय इसके अधिकार में दो सौ गांवों का राजस्व था। खुदाई में कुछ गांवों की मुहरें तथा पत्र मिले हैं जो विश्वविद्यालय को सम्बोधित करके लिखे गये हैं।

इस प्रकार नालन्दा अपने ढंग का अद्भुत एवं निराला विश्वविद्यालय था। हर्ष के बाद लगभग बारहवीं सदी तक इसकी ख्याति बनी रही। मन्दसोर प्रस्तर लेख (आठवीं सदी) से पता चलता है कि सभी नगरों में नालन्दा अपने विद्वानों के कारण, जो विभिन्न धर्मग्रन्थों तथा दर्शन के क्षेत्र में निष्णात थे, सबसे अधिक ख्याति प्राप्त किये हुए था। नवीं सदी में भी यह अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त किये हुए था। ज्ञात होता है कि इसकी ख्याति से आकर्षित होकर जावा एवं सुमात्रा के शासक बालपुत्रदेव ने नालन्दा में एक मठ बनवाया तथा उसके निर्वाह के लिये अपने मित्र बंगाल के पाल नरेश देवपाल से पाँच गांव दान में दिलवाया। ग्यारहवीं सदी से पाल शासकों ने नालंदा के स्थान पर विक्रमशिला को राजकीय संरक्षण देना प्रारंभ कर दिया जिससे नालंदा का महत्व घटने लगा। तिब्बती स्रोतों से पता चलता है कि इस समय से नालंदा पर तन्त्रयान का प्रभाव बढ़ने लगा। इस कारण भी नालंदा की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंची। अन्ततः बारहवीं सदी के अन्त में मुस्लिम आक्रान्ता बख्तियार खिलजी ने इस विश्वविद्यालय को ध्वस्त कर दिया। यहाँ के भिक्षुओं की हत्याकर दी गयी तथा बहुमूल्य पुस्तकालय को जला दिया गया। इस प्रकार एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के शिक्षा केन्द्र का अन्त दुखद हुआ।

नालन्दा विश्वविद्यालय के विद्वानों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने तिब्बत में बौद्धधर्म एवं भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। आठवीं सदी से नालंदा के विद्वान् तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रचारार्थ जाने लगे। नालंदा में तिब्बती भाषा का अध्ययन भी प्रारंभ हो गया। तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचारकों में सर्वप्रथम चन्द्रगोमिन् का नाम उल्लेखनीय हैं। उनके ग्रन्थों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया गया। नालन्दा के दूसरे बौद्ध विद्वान् शान्तरक्षित् आठवीं सदी के मध्य तिब्बत नरेश के निमंत्रण पर वहां गये तथा बौद्धधर्म का उपदेश दिया। उन्हीं के निर्देशन में प्रथम तिब्बती बौद्धमठ निर्मित कराया गया। इस मठ में अध्यक्ष के रूप में जीवनपर्यन्त रहते हुए शान्तरक्षित् ने तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार किया। उनके इस कार्य में नालन्दा से ही शिक्षित कश्मीरी भिक्षु पद्मसंभव ने भरपूर सहायता प्रदान किया।

इस प्रकार नालन्दा प्राचीन शिक्षा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण केन्द्र था जिसकी ख्याति न केवल भारत अपितु विदेशों में भी फैली हुई थी। वस्तुतः यह एक विश्वभारती था जहाँ से संपूर्ण देश में संस्कृति का प्रसार होता था। यहां के विद्वानों की महानता, उदारता एवं पाण्डित्य के परिणामस्वरूप नालन्दा का नाम ही तत्कालीन विश्व में विद्या के सर्वोच्च एवं सर्वोत्तम गुणों का पर्याय बन गया था।

आधुनिक बिहार राज्य में पटना जिले के अंतर्गत बड़गांव नामक ग्राम के समीप गिरिव्रज नगर था। इसे राजगृह भी कहते थे। इससे बारह किलोमीटर उत्तर में नालंदा महाविहार था। गुप्त नरेश शक्रादित्य ने सर्वप्रथम नालंदा में एक बौद्ध विहार बनवाया था। इसके बाद इस विहार के दक्षिण में बुधगुप्त ने एक विहार बनवाया, बुधगुप्त द्वारा निर्मित विहार के पूर्व में तथागुप्त ने एक अन्य विहार निर्मित किया। इस विहार के पूर्व–दक्षिण में बालादित्य ने एक विहार बनवाया। इसकी उत्तर दिशा में वज्र ने एक–एक विहार और निर्मित किये। इसके पश्चात मध्यभारत के किसी अन्य नरेश ने भी यहां एक बौद्ध विहार बनवाया था। इस प्रकार इस नालंदा महाविहार के स्थापित और वृद्धि करने में गुप्त सम्राटों का अधिक हाथ था। धीरे–धीरे इस महाविहार में अन्य विहार, पुस्तकालय भवन और बौद्धमंदिर बनवाये गये। यहां तीन सौ कक्ष वाली आठ विशाल शालाएं, विभिन्न प्रकार के आवासगृह, व्याख्यान कक्ष, ग्रंथालय, वेधशाला आदि थे। यशोवर्मन के नालंदा अभिलेख से ज्ञात होता है कि यहां ऊंचे

मंदिर और कई मंजिल वाले भव्य विशाल विहार थे जो बादलों को छूते थे। इस नालंदा महाविहार के चतुर्दिक प्राचीर थी जिसमें दक्षिण की ओर विशाल प्रवेश द्वारा था।'

ह्वेनसांग के अनुसार यहां दस सहस्र विद्यार्थी थे, पर इत्सिंग के अनुसार यहां साढ़े तीन सहस्र विद्यार्थी थे। बौद्धसंघ के द्वारा यहां निवास करने वाले भिक्षुओं और विद्यार्थियों के निवास, वस्त्र, भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था की जाती थी। अग्रहार दान के अभिलेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यहां अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को हर प्रकार की सुविधा प्रदान की जाती थी जिससे कि वह बिना किसी व्यवधान के अपना अध्ययन विधिवत पूर्ण कर सकें। नालंदा के संघाराम में, प्रत्येक कक्ष में एक या दो विद्यार्थियों के निवास की व्यवस्था थी। प्रत्येक कक्ष में शयनार्थ एक या दो पाषाण के आसन तथा दीपक एवं पुस्तकें रखने के लिये ताख होते थे। चीनी यात्रियों के विवरणों से ज्ञात होता है कि इस विशाल नालंदा महाविहार का व्यय राजाओं द्वारा दान में दिए हुए दो सौ ग्रामों की आय से चलता था।

नालंदा के गुरूओं और आचार्यो के निर्मल चरित्र, प्रकाण्ड पांडित्य और असीम ज्ञान की कीर्ति के कारण भारत के विभिन्न प्रांतों के नहीं अपितु भारत के बाहर के देशों जैसे मध्य एशिया, चीन, कोरिया, जावा, लंका, आदि देशों के विद्यार्थी भी विद्याध्ययन के लिए यहां आते थे। इत्सिंग ने विविध देशों से आकर यहां अध्ययन करने वाले साठ छात्रों का उल्लेख किया है। स्वयं इत्सिंग यहां बौद्ध विज्ञान और दर्शन के अध्ययन के लिये दस वर्ष तक रहा था। नालंदा की ऐसी प्रसिद्धि के कारण अध्ययन के लिये उसमें प्रवेश पाने के लिए होड़ लगी रहती थी। उसमें प्रवेश के नियम अत्यंत ही कठोर थे।

नालंदा के प्रवेश द्वारा पर पंडित नियुक्त किए गए थे जो प्रवेश परीक्षा लेते थे। यह प्रवेश परीक्षा इतनी ऊंची और कठिन होती थी, उसमें ऐसे कठिन और गूढ़ प्रश्न पूछे जाते थे कि उसमें दस में से दो तीन विद्यार्थी ही सफलता प्राप्त कर सकते थे और वे ही प्रविष्ट हो पाते थे।

नालंदा में प्रत्येक शिक्षक के पास नौ या दस विद्यार्थी अध्ययन के लिये रहते थे। इससे गुरू अपने शिष्यों पर विशेष रूप से ध्यान दे सकते थे। विद्यार्थीगण नियमों और उपनियमों का सुचारू रूप से पालन करते थे और विद्वान भिक्षु गुरू के प्रति भक्ति और सम्मान के भाव रखते थे। ह्वेनसांग के अनुसार नालंदा महाविहार की दीर्घकालीन अवधि में किसी विद्यार्थी ने कहीं कोई अविनय या अपचार नहीं किया।

नालंदा प्रमुखतया बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय का महाविहार था। इसलिये इसमें बौद्धों के धार्मिक साहित्य के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता था। परंतु इस महाविहार में बड़ी उदारता और सहिष्णुता थी। इसमें ब्राह्मण धर्म के वेदों और उनके धार्मिक साहित्य का भी अध्यन किया जाता था। इसके अतिरिक्त व्याकारण, गणित, कर्मकांड, दर्शन, तंत्र, ज्योतिष, आयुर्वेद, हेतु विद्या, शब्द विद्या, अर्थ विद्या और कला की शिक्षा भी दी जाती थी। शिक्षा व्याख्यान, वाद–विवाद और प्रश्नोत्तर के माध्यम से होती थी। वाद–विवाद के निमित्त वेदांत तथा सांख्य दर्शनों का पठन–पाठन होता था। गुरूओं, आचार्यों और विद्यार्थियों के लिये नालंदा में एक विशाल पुस्तकालय था। यह रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरंजन नामक तीन विशाल भवनों में फैला हुआ था। रत्नोदधि नौ मंजिलों वाला भव्य भवन था। इसमें प्रज्ञा पारमिता वर्ग के धार्मिक ग्रंथ और तंत्र तथा साहित्यिक ग्रंथ रखे गये थे।

नालंदा की आंतरिक व्यवस्था के लिये विभिन्न अधिकारी नियुक्त किये गये थे। प्रत्येक संघाराम के लिये "द्वार पंडित" नियुक्त किया गया था। यह संघाराम के प्रवेश द्वार के समीप बने निवास गृह में रहता था और संघाराम में भिक्षु और विद्यार्थी के प्रवेश का भार इस पर था। कर्मदान नामक निरीक्षण करने वाला उच्च अधिकारी था। वह महाविहार में लगने वाली विभिन्न प्रकार की सामग्री संग्रहीत करता था और उसके उपयोग के लिये उसका वितरण भी। स्थविर नामक अधिकारी धार्मिक कार्य करता था। महाविहार में शिक्षा का भार कुलपति पर था। इस पद पर बड़े योग्य ख्याति प्राप्त निपुण विद्वान आचार्य नियुक्त किये जाते थे। नालंदा महाविहार का सबसे पहला कुलपति धर्मपाल था और उसके बाद उसका विद्वान लोकप्रिय शिष्य नालंदा का कुलपति नियुक्त किया गया था। नालंदा महाविहार के प्रसिद्ध विद्वान और आचार्य थे–चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, यशस्विता, प्रभामति, शीलभद्र, धर्मकीर्ति, शांतिरक्षित, पद्म–संभव आदि। गुप्तकाल के बाद आठवीं सदी में तिब्बत के तत्कालीन नरेश ने अपने राज्य में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये नालंदा के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य शांतिरक्षित को अपने यहां आमंत्रित किया था। कालांतर में नालंदा एक ऐसा विशाल प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय बन गया था कि उसके यश और गौरव से प्रभावित होकर जावा द्वीप के नरेश बालपुत्रदेव ने नालंदा में एक विहार निर्मित करवाया और अपने मित्र नरेश बंगाल के पालवंश के राजा देवपाल से उसके व्यय एवं रक्षा हेतु पांच ग्राम दान में दिलवा दिये।

यदि पूर्व में विहार में नालंदा शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था तो पश्चिम में सौराष्ट्र में बल्लभी भी प्रख्यात शिक्षा केन्द्र था। गुप्तकाल के उत्तरार्ध में इसका प्रारंभ हुआ था। ब्राह्मण विद्याओं, ग्रंथों और साहित्य के अध्ययन अध्यापन के लिये यह प्रसिद्ध रहा।

लगभग छः सौ वर्षों तक ज्ञान और विद्या के दान में बल्लभी सक्रिय रहा। बल्लभी के नरेशों ने वहां की विद्या संस्थाओं को सहायता प्रदान की थी।

दक्षिण भारत में भी शिक्षा का प्रचुर प्रचार था। वहां उच्च शिक्षा के केन्द्र को घटिका कहते थे। कांची में जहाँ प्रसिद्ध घटिका थी, शिक्षा का प्रख्यात केन्द्र था। वहां ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म दोनों के धर्मशास्त्रों और लौकिक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। दक्षिण भारत के कदम्ब राजकुल के संस्थापक ब्राह्मण मयूर शर्मा ने कांची की एक घटिका में वेदों का अध्ययन किया था।

बल्लभी :

गुजरात के काठियावाड़ क्षेत्र में आधुनिक 'वल' नामक स्थान पर स्थित बल्लभी पश्चिम भारत में शिक्षा तथा संस्कृति का प्रसिद्ध केन्द्र था जहाँ नालंदा की कोटि का एक विश्वविद्यालय था। इस नगर की स्थापना मैत्रकवंशी शासक भट्टार्क ने की थी। यहाँ मैत्रक राजवपंश की

राजधानी थी। सातवीं सदी में बल्लभी एक प्रसिद्ध व्यापारिक एवं शैक्षणिक केन्द्र बन गया। हुएनसांग इस नगर की समृद्धि का वर्णन करता है। उसके अनुसार यहाँ एक सौ बौद्ध विहार थे जिनमें लगभग 6000 हीनयानी भिक्षु निवास करते थे। नगर की परिधि छः मील के घेरे में थी।

बल्लभी हीनयान बौद्धधर्म की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। यहां भारत के विभिन्न भागों से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के निमित्त आते थे। यह उच्च शिक्षा का केन्द्र था। इत्सिंग हमें बताता है कि सभी देशों के विद्वान् यहाँ एकत्रित होते थे तथा विविध सिद्धांतों पर शास्त्रार्थ करके उनकी सत्यता निर्धारित किया करते थे। यहाँ के अध्यापक दो या तीन वर्ष तक विद्यार्थियों को पढ़ाते थे तथा इसी अवधि में विद्यार्थी प्रकाण्ड विद्वान् बन जाते थे। कथासरित्सागर से पता चलता है कि अन्तर्वेदी (गंगा का प्रदेश) के ब्राह्मण तक अपने बच्चों को उच्च शिक्षा के लिये बल्लभी भेजते थे। यह भी पता चलता है कि बंगाल जैसे दूरवर्ती प्रदेश से भी कुछ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्ति हेतु बल्लभी पहुंचते थे।

बल्लभी विश्वविद्यालय अपनी सहिष्णुता तथा बौद्धिक स्वतंत्रता के लिये विख्यात था। बौद्ध धर्म के साथ–साथ यहाँ न्याय, विधि, वार्त्ता, साहित्य आदि विषयों की उच्च शिक्षा की भी उत्तम व्यवस्था थी। इत्सिंग हमें बताता है कि यहाँ के स्नातकों को प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया जाता था। यह तभी संभव था जबकि पाठ्यक्रम में धर्म के अतिरिक्त लौकिक विषय भी शामिल रहे हों। सातवीं सदी के मध्य विश्वविद्यालय के प्रमुख आचार्य स्थिरमति तथा गुणमति थे। धरसेन प्रथम के लेख से पता चलता है कि उसने इनके आवास के लिये दो सुन्दर विहार बनवाये थे। यहीं रहते हुए इन दोनों विद्वानों ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की थी तथा इसी स्थान से बाद में वे नालंदा विश्वविद्यालय में गये थे। नालन्दा के ही समान बल्लभी के विद्वानों का नाम भी श्वेताक्षरों में विश्वविद्यालय के तोरणों पर अंकित किया जाता था।'

इस प्रकार बल्लभी भी शिक्षा का एक विख्यात केन्द्र था तथा यहाँ भी अध्ययन–अध्यापन का स्तर अत्यंत उच्चकोटि का था। इस विश्वविद्यालय के आचार्यों द्वारा परीक्षित होने के बाद ही विद्वानों को अपने सिद्धांतों की सत्यपरता तथा अपनी बौद्धिकता का सही ज्ञान हो पाता था, जैसाकि इत्सिंग के विवरण से पता चलता है। सातवीं सदी में तो बल्लभी का विश्वविद्यालय नालंदा की प्रतिस्पर्धा करने लगा था। मैत्रक शासकों ने इसे उदारतापूर्वक दान दिये तथा उनके काल (480–775 ई0) में इसकी खूब उन्नति हुई। राजकीय संरक्षण के साथ–साथ विश्वविद्यालय को नगर के प्रसिद्ध व्यापारियों तथा व्यवसायियों से भी प्रभूत दान मिला। यहाँ के उत्तीर्ण छात्र या तो राजकीय पदों पर नियुक्ति पाते अथवा उन्हें अपना जीवनयापन करने के निमित्त आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी।

निष्कर्षः –

गुप्त काल में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान था। शिक्षा, ज्ञान और संस्कृति के प्रसार में गुप्त शासकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इस काल में शिक्षा प्रणाली मुख्य रूप से ब्राह्मणवादी अग्रहारों और बौद्ध मठों द्वारा प्रदान की जाती थी। गुप्त काल में शिक्षा में उपाध्यायों ने अध्यापन को पेशे के रूप में अपनाया और विद्यार्थियों को शुल्क दिया। विद्वत्तापूर्ण शिक्षा के लिए धर्मशास्त्र, स्मृति, इतिहास–पुराण और पारम्परिक शास्त्रों का अध्ययन पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। गैर–विद्वत्तापूर्ण शिक्षा के लिए गणित, युद्ध विज्ञान, खगोल विज्ञान, ज्योतिष और चिकित्सा को शामिल किया गया। गुप्त काल में शिक्षा को बहुत महत्व दिया जाता था और इसे व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक, धार्मिक और आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक माना जाता था। नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम ने की थी। गुप्त काल में शिक्षा के क्षेत्र में कई विद्वानों और वैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया, जैसे कि कालिदास और आर्यभट्ट। गुप्त काल में शिक्षा प्रणाली में धर्मनिरपेक्ष और धार्मिक दोनों प्रकार के साहित्य का अध्ययन शामिल था।

संदर्भ सूचीः –

गोयल, श्रीराम (1982)ः प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, जयपुर, पृ. 74–78

घोषाल, यू० एन० (1959) ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन पोलिटिकल आइडियाज, बम्बई, पृ. 50–55

घोष ए० (1973)–द सीटी इन अर्ली हिस्टोरिकल इंडिया, शिमला, पृ. 51–96

जैन, जे० सी० (1947) लाइफ इन एन्श्येण्ट इण्डिया एज डिपिक्टिड इन जैन केनन्स्, बम्बई, पृ. 38–43

गोयल, एस० आर0 (1967)ः ए हिस्ट्री ऑफ दि एम्पीरियल गुप्ताज, इलाहाबाद, पृ. 42–48

गोयल, एस० आर० (1963)ः विश्व की प्राचीन सभ्यताएं, गोरखपुर, पृ. 65–68

गुप्त और हर्डीकर (1985)ः एन्श्येण्ट इण्डियन सिल्वर पञ्चमार्क्स क्वायन्स् ऑफ दि मगध–मौर्य कार्षापण सिरीज, अञ्जानेरी, पृ. 82–85

ईटी रिचमंडः मुस्लिम आर्किटेक्चर, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, 1926

वासुदेव उपाध्यायः प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहास और मंदिर, पटना, 1972

भगवतीशरण उपाध्यायः भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका, नई दिल्ली, 1991

भगवतीशरण उपाध्यायः गुप्त काल का सांस्कृतिक इतिहास, लखनऊ, 1969

क्यू एचीसनः संधियों का एक संग्रह, सगाई और रविवार, खंड 2 1932

जयशंकर मिश्रः प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2002

दामोदर धर्मानंद कोसांबीः प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, राजकमल प्रकाशन प्रा। लिमिटेड, नई दिल्ली, 2002

परमेश्वरी लाल गुप्ताः भारतीय वास्तुकला, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1999

रमानाथ मिश्रः भारतीय मूर्तिकला, 1978

रमानाथ मिश्रः भारतीय मूर्तिकला का इतिहास, ग्रन्थ शिल्पी (भारत) प्रा। दिल्ली, 2002

राधा कुमुद मुखर्जीः हिंदू सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

रोमिला थापरः भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996

विमल चंद्र पांडेः प्राचीन भारत का इतिहास (भाग –2), अभय प्रेस, मेरठ, 1987–88

विमल चंद्र पांडेः प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास (भाग 2), सेंट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 2001